□ डा. पुष्पलता जैन
प्राध्यापिका
एस. एफ. एस. कालेज, नागपुर

जैन भूगोल का व्यावहारिक पक्ष

समग्र भारतीय वाङ्मय की ओर दृष्टिपात करने से यह निष्कर्ष निकालना अनैतिहासिक नहीं होगा कि उसका प्रारम्भिक रूप श्रुति परम्परा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी गुजरता हुआ उस समय संकलित होकर सामने आया जबकि उसके आधार पर काफी साहित्य निर्मित हो चुका था। यह तथ्य वैदिक, जैन और बौद्ध तीनों संस्कृतियों के प्राचीन पन्नों के उलटने से उद्घाटित होता है। ऐसी स्थिति में प्राचीन सूत्रों में अपनी आवश्यकता, परिस्थिति और सुविधा के अनुसार परिवर्तन और परिवर्धन होता ही रहा है। वेद, प्राकृत और जैन आगम तथा पालि त्रिपिटक साहित्य का विकास इस तथ्य का निदर्शन है।

इसी प्रकार यह तथ्य भी हमसे छिपा नहीं है कि तीनों संस्कृतियों ने अपने साहित्य में तत्कालीन प्रचलित लोककथाओं और लोकगाथाओं का अपने-अपने ढंग से उपयोग किया है। यही कारण है कि लोककथा साहित्य की शताधिक कथाएँ कुछ हेर-फेर के साथ तीनों संस्कृतियों के साहित्य में प्रयुक्त हुई हैं।

इन कथा सूत्रों के मूल उत्स को खोजना सरल नहीं है। किस सूत्र को किसने कहाँ से लेकर आत्मसात् किया है इसे निर्विवाद रूप से हल नहीं किया जा सकता। इसलिये यह मानकर चलना अधिक उचित होगा कि इस प्रकार के कथासूत्र लोककथाओं के अंग रहे होंगे जिनका उपयोग सभी धर्माचार्यों ने अपने धार्मिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन की पृष्ठभूमि में किया है।

जहां तक भौगोलिक मान्यता का प्रश्न है, यह विषय भी कम विवादास्पद नहीं। तीनों संस्कृतियों के भौगोलिक सिद्धान्तों का उत्स एक ही रहा होगा जिसे लगता है, कुछ परिवर्तन के साथ सभी ने अपने ढंग से विकसित कर लिया। इस संदर्भ में जब हम भारतीय भौगोलिक ज्ञान के ऊपर दृष्टिपात करते हैं तब हम उसके विकासात्मक स्वरूप को आठ प्रमुख युगों में विभाजित कर सकते हैं—

१. सिन्धु-सभ्यता काल (आदिकाल से लेकर १५०० ई० पू० तक)

२. वैदिक काल (१००० ई० पू० तक)

३. संहिता काल (१५०० ई० पू० तक)

४. उपनिषद् काल (१५०० ई० पू० से ६०० ई० पू० तक)

५. रामायण-महाभारत काल (१६०० ई० पू० से ६०० ई० पू० तक)

६. बौद्ध काल (६०० ई० पू० से २०० ईसवी तक)

७. नया पौराणिक काल (२०० ने ८०० ईसवी तक)

८. मध्यकाल (८०० ई० से लगभग १७वीं शताब्दी तक)

भारतीय भौगोलिक ज्ञान का यह काल विभाजन एक सामान्य दृष्टि से किया गया है। इन कालों में मूल भौगोलिक परम्परा का विकास सुनिश्चित रूप से हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूगोल (Geography) यूनानी भाषा के दो पदों Ge तथा grapho से मिलकर मिला है। ge का अर्थ पृथ्वी और Grapho का अर्थ वर्णन करना है। इस प्रकार Geography की परिधि में पृथ्वी का वर्णन किया जाता है।

भूगोल जिसे हम साधारणतः पौराणिकता के साथ जोड़ते चले आये हैं, आज हमारे सामने एक प्रगतिशील विज्ञान के रूप में खड़ा हो गया है। उसका उद्देश्य और अध्ययन काफी विस्तृत होता चला जा रहा है। उद्देश्य के रूप में उसने मानव की उन्नति और कल्याण के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है इसलिये आज वह अन्तर्वैज्ञानिक (Interdisciplinary) विषय बन गया है।

जैसे-जैसे भूगोल के अध्ययन का विकास होता गया विद्वानों ने उसे परिभाषाओं में बाँधने का प्रयत्न किया है। ऐसे विद्वानों में एकरमेन, ल्यूकरमेन, यीट्स, रिट्टर, हेटलर आदि विद्वान प्रमुख हैं जिनकी परिभाषाओं के आधार पर भूगोल की निम्नलिखित परिभाषा प्रस्तुत की जाती है–'भूगोल वह विज्ञान है जो पृथ्वी का अध्ययन तथा वर्णन मानवीय संसार या मानवीय निवासके रूप में (१) क्षेत्रों या स्थानों की विशेषताओं (२) क्षेत्रीय विविधताओं तथा (३) स्थानीय सम्बन्धों की पृष्ठभूमि में करता है। इस प्रकार भूगोल पृथ्वी पर वितरणों का विज्ञान (Science of distribution on Earth) है।

इस परिभाषा के आधार पर यह कहा जा सकता है, भूगोल की अध्ययन सीमा में पृथ्वीतल का अध्ययन प्रमुख है। इस कथ्य में चार तथ्य सम्मिलित है—

(१) पृथ्वीतल पर समस्त थल खण्डों और महा सागरों के तल।

(२) पृथ्वीतल से थोड़ी गहराई तक का सीधा प्रभावकारी पर्त।

(३) वायुमण्डल, विशेषतः वायुमण्डल का निचला पर्त, जिसमें ऋतु, जलवायु की विभिन्नताएँ होती हैं।

(४) पृथ्वी के सौर सम्बन्ध।

पृथ्वी को केन्द्र में रखकर जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, सोवियत संघ आदि देशों में काफी शोध हुए हैं और हो रहे हैं। वहाँ के विद्वानों की भौगोलिक विचारधाराओं को हम एक-दूसरे की परिपूरकता के सन्दर्भ में समझ सकते हैं। उनके अध्ययन में दो पक्ष उभरकर सामने आते हैं—

१. वातावरण और परिस्थिति विज्ञान

२. प्रादेशिक विभिन्नताएँ और मानवीय प्रगति तथा कल्याण में असमानतायें और असन्तुलन।

इस सन्दर्भ में जब हम प्राचीन भूगोल और अर्वाचीन भूगोल की समीक्षा करते हैं तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्राचीन भूगोल कतिपय लोकाख्यानों पर आधारित रहा है और आधुनिक भूगोल वैज्ञानिक तथ्यों पर अवलम्बित है जहाँ मानवीय साधनों की क्षमता और योग्यता पर अधिक बल दिया जाता है। प्राचीन भूगोल आर्थिक प्रगति से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रखता, जबकि आधुनिक भूगोल का तो यह केन्द्रीय तत्व ही है इसलिये आधुनिक भूगोल को व्यावहारिक भूगोल(Applied Geography) कहा जाने लगा है। इसमें मुख्य रूप से—१. समूह व्यवहार—(Group behaviour) तथा व्यावहारिक क्षेत्र में मानसिक समायोजन जैसे तत्वों पर विशेष विचार किया जाता है।

प्रारम्भ से ही भूगोल का उद्देश्य और उपयोग व्यक्ति और समाज का हित-साधन रहा है। चाहे वह आध्यात्मिक रहा हो या लौकिक। आधुनिक व्यावहारिक भूगोल में आध्यात्मिक दृष्टि का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। इसलिए व्यावहारिक भूगोल की परिभाषा साधारण तौर पर इस प्रकार की जाती है—"समाज की आवश्यकताओं की पूर्तियों के लिए भौगोलिक वातावरण के समस्त संसाधनों को विवेकपूर्वक करने के लिए भौगोलिक आचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचार ज्ञान पद्धतियों एवं तकनीकों का व्यावहारिक उपयोग ही व्यावहारिक भूगोल है।"

इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि व्यावहारिक भूगोल का उपयोग समाज के हित के लिए किया जाता है और इसीलिए इसके अध्ययन की परिधि में मानव, स्थान तथा संसाधन का अध्ययन आता है। इसे हम निम्नलिखित वर्गीकरण के माध्यम से समझ सकते हैं—

१. **भौतिक अध्ययन**—भू-आकृति, जलवायु, समुद्री विज्ञान आदि इसके अन्तर्गत आता है।

२. **आर्थिक अध्ययन**—इसमें कृषि, औद्योगिक, व्यापार, यातायात, पर्यटन आता है।

३. **सामाजिक, सांस्कृतिक अध्ययन**—इसमें जनसंख्या, अधिवास, बस्ती, नगरीय, राजनीतिक, प्रादेशिक, सैनिक आदि का अध्ययन होता है।

४. **अन्य शाखाएँ**—जीव (वनस्पति), चिकित्सा, मौन चित्रकला आदि का अध्ययन होता है।

जैन भूगोल यद्यपि पौराणिकता को लिए हुए है, फिर भी उसका यदि हम वर्गीकरण करें तो हम व्यावहारिक भूगोल के उपर्युक्त अध्ययन प्रकरणों से सम्बद्ध सामग्री को आसानी से खोज सकते हैं। इस दृष्टि से यह एक स्वतन्त्र शोध प्रबन्ध का विषय है।

जैसा हमने पहले कहा है जैन भूगोल प्रश्न-चिन्हों से दब गया है। आधुनिक भूगोल से वह निश्चित ही समग्र रूप से मेल नहीं खाता, इसका तात्पर्य यह नहीं कि जैन भूगोल का समूचा विषय अध्ययन और उपयोगिता के बाहर है। इस परि-स्थिति में हमारा अध्ययन वस्तुपरकता की मांग करता है। आगमिक श्रद्धा को वैज्ञानिक अन्वेषणों के साथ यदि हम पूरी तरह से न जोड़ें और तब तक रुक जाएँ, जब तक उन्हें वैज्ञानिक स्वीकार न कर लें तो हम उन्मुक्त मन से दोनों पहलुओं को और उनके आयामों को अपने परिधि के भीतर रख सकते हैं।

जम्बूद्वीप तीनों संस्कृतियों में स्वीकार किया गया है। भले ही उसकी सीमा के विषय में विवाद रहा है। जैन संस्कृति में तो इसका वर्णन कितने अधिक विस्तार से मिलता है जितना जैनेतर साहित्य में नहीं मिलता। पर्वत, गुफा, नदी, वृक्ष, अरण्य, देश, नगर आदि का वर्णन पाठक को हैरान कर देता है। इसका प्रथम वर्णन ठाणांग और सम-वायांग में मिलता है। इन दोनों ग्रन्थों के आधार पर जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति और चन्द्र प्रज्ञप्ति की रचना हुई है। इन सभी ग्रन्थों को हम लगभग ५वीं शताब्दी की रचना कह सकते हैं। आचार्य यतिवृषभ की तिलोयपण्णत्ति भी इसी समय के आसपास की रचना होनी चाहिए। श्री पं० फूल-चन्द सिद्धान्तशास्त्री इस रचना को वि. सं. ८७३ के बाद की रचना मानते हैं, जबकि श्री पं० जुगल-किशोर मुख्तार उसे ईसवी सन् के आसपास रखने का प्रयत्न करते हैं।

जम्बूद्वीप जैन संस्कृति में समस्त पृथ्वी अर्थात् मध्यलोक का नामांतरण है जिसे सात क्षेत्रों में विभक्त किया गया है। इसके सारे सन्दर्भों को रखने की यहाँ आवश्यकता नहीं है, पर इतना अवश्य है कि पर्वत, नदी, नगर, आदि की जो स्थितियाँ करणानुयोग में वर्णित हैं उन्हें आधुनिक भूगोल के परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयत्न किया जाए। उदाहरण के तौर पर जम्बूद्वीप को यूरेशिया खण्ड से यदि पहचाना जाए तो शायद उसकी अवस्थिति किसी सीमा तक स्वीकार की जा सकती है। इसी तरह सुमेरु को पामेर की पर्वत श्रेणियों के साथ किसी सीमा तक रखा जा सकता है। हिमवान को हिमालय, निषध को हिन्दुकुश, नील को अलाई नाम, शिखरी को सायान से मिलाया जा सकता है। रम्यक की मध्य एशिया या दक्षिणी पश्चिमी की सीक्यांग से, हैरण्यवत् की उत्तरी सीक्यांग से, उत्तरकुरु की रूस तथा साइबेरिया से

(शेष पृष्ठ ३८२ पर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org